'अलग-अलग रास्ते' में चित्रित स्त्री-छवि

नेहा शर्मा

(शोधार्थी, अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ, भारत)

सारांश -

समाज में स्त्रियों की सशक्त स्थिति के निर्माण के लिए उनके अधिकार और मूल्यों का हनन करने वाली उन कुप्रथाओं और मानसिकता को जड़ से खत्म करना होगा | जो समाज में कई सदियों से व्याप्त है, जैसे - अशिक्षा, असमानता, यौन हिंसा, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, मानव तस्करी, वेश्यावृति, और अन्य जघन्य अपराध | समाज में ऐसी स्थिति का निर्वहन होना चाहिए जहाँ स्त्री अपने जीवन से जुड़े हर फैसले स्वयं ले सकती हो | स्त्रियाँ शारीरिक, मानसिक, और सामाजिक रूप से मजबूत हो, उनके उत्थान के लिए स्वस्थ परिवार और स्वस्थ समाज की जरूरत है जो राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है | अशिक्षित स्त्री न तो स्वयं का विकास कर सकती है, न ही परिवार का और न ही समाज और देश का, इसलिए अत्यंत आवश्यक है कि स्त्री शिक्षा प्राप्त करके स्वयं को, परिवार को, समाज और देश को सशक्त और विकसित बनाने में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह कर सके | वास्तव में सृष्टि की संरचना में पुरुष की तुलना में स्त्री का महत्व अधिक है, इसलिए स्त्री को सृष्टि की धुरी कहा जाता है, परन्तु पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को दोयम दर्जे का स्थान दिया गया | इन्हीं बेड़ियों को तोड़ने के लिए आज की स्त्रियाँ सशक्त होकर प्रतिरोध की आवाज उठा रही हैं | ये आवाज़ साहित्य में किस प्रकार उपस्थित हुआ है और अश्क जी के नाटकों में कितना मुखर हो पाया है? इसकी पड़ताल में ही ये आलेख प्रस्तुत है।

मूलशब्द- सशक्तिकरण, पितृसत्ता, पुरुषवादी इत्यादि।

प्रस्तावना

स्त्री-सशक्तिकरण का मूल प्रश्न स्त्री-मुक्ति से जुडा हुआ है क्योंकि स्त्री के सशक्त होने से समाज भी सशक्त बनता है | इसलिए कहा भी जाता है – "सशक्त स्त्री-सशक्त समाज" स्त्री किसी पर अपना अधिकार या प्रभुत्व नहीं चाहती है | बल्कि समाज में समता के अधिकार की वकालत करती है | महदेवी वर्मा जी के शब्दों में – "हमें न किसी पर जय चाहिए न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न किसी पर प्रभुता | केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु

जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी |"[1] स्त्री की मुक्ति का संघर्ष उनके अधिकारों के सीमित किये जाने के समय से ही जारी है, भले ही उसे कहीं दर्ज किया गया हो या नहीं।

प्रसादोत्तर युग में हिंदी नाट्य साहित्य के क्षेत्र में समाज में स्त्रियों की समस्या के प्रति एक नूतन दृष्टि दिखाई पड़ती है | इस युग के प्रमुख नाटककारों ने समाज में व्याप्त स्त्रियों की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है | जिनमें सशक्त नाटककार उपेंद्रनाथ अश्क जी ने समाज के बनाए हुए ढकोसलों, नियमों के बंधनों की जंजीरों में जकड़ी हुई स्त्री की मनोवृति और उसकी भावनाओं को गहराई से महसूस किया और अपने नाटकों के माध्यम समाज का मार्गदर्शन किया | उनके सुप्रसिद्ध 'अलग-अलग रास्ते' शीर्षक नाटक में रानी और राजी के माध्यम से समाज में व्याप्त स्त्रियों की दो विचारधारा को चित्रित किया गया है | दोनों के विचार एक-दूसरे के पूरक है | रानी अपने पति और ससुराल वालों को दहेज की माँग करने पर छोड़कर अपने पिता के घर आ जाती है | उसका भाई पूरन कहता है – "मुझे तो इस बात का गर्व है, कि तुमने अपने स्वाभिमान की रक्षा की"[2] प्राचीन समय में ब्याह के अवसर पर माता-पिता के द्वारा अपनी पुत्री को दी जाने वाली भेंट की प्रथा आज समाज में एक विकराल समस्या 'दहेज' के रूप बन गयी है | प्रस्तुत नाटक में रानी इस दहेज़ की माँग का पुरजोर विरोध करती हुई नजर आती है |

राज का पति मदन माता-पिता के दवाब में राज से विवाह कर लेता है परन्तु वह अपनी सहपाठी सुदर्शना से प्रेम करता है | इसलिए राजी भी अपने पति को छोड़कर अपने पिता के घर आ जाती है | रानी अपनी बहन से विवाह को बंधन मानती हुई कहती है – " संसार भर में ब्याह स्त्री के लिए सुख-शांति का सन्देश लाता है, पर हमारी गुलामी के बंधन इसके बाद और भी मजबूत हो जाते है |"[3] वास्तव में समाज में स्त्री के वैवाहिक जीवन को दासी का जीवन व्यतीत करने के रूप में समझा जाने लगा है | विवाह की नींव सामाजिक प्रथा पर रखी गयी है प्रेम के आधार पर नहीं रखी गयी | यदि समाज में प्रेम के आधार पर विवाह होते तो इन कुरीतियों और ढकोसलों की आवश्यकता ही नहीं होती | मदन इसी प्रथा पर व्यंग्य करता हुआ कहता है – " तुम्हारे अधिकार की नींव एक सामाजिक प्रथा पर टिकी है | हृदय से उसका कोई संबंध नहीं | सुदर्शना का अधिकार मेरे हृदय से संबंध रखता है | बारातियों, पंडितों, पुरोहितों और हमारे माता-पिता ने यज्ञ की अग्नि ने हमें एक दूसरे के शरीर सौंप दिए है | हृदय तो नहीं सौंपे |"[4] समाज की एक और सड़ी-गली कुप्रथा है वह है 'जाति प्रथा' | विवाह के लिए जाति को अत्यंत

महत्वपूर्ण मानने वालों पर अश्क जी ने पूरन नामक पात्र के माध्यम से व्यंग्य किया है – "जाति का भी शादी से कोई संबंध नहीं | उसके लिए साथी, हमदर्द और हमख्याल होना चाहिए |"[5] हमारा समाज पितृसत्तात्मक है यहाँ सारे फैसले लेने का अधिकार पुरषों के पास सुरक्षित है | स्त्री पुरषों के अधीन एक अबला मात्र रह गयी है | पुरुष जैसा चाहे स्त्री के साथ व्यवहार कर सकता है | क्योंकि स्त्री का महत्व उसकी संगिनी या सहचरी के रूप में न होकर दासी या वस्तु के रूप में है | समाज के इस पुरुषवादी विचार पर व्यंग्य करते हुए पूरन कहता है – "इस देश में पुरुष कभी गलती नहीं करता, उसका कभी दोष नहीं होता यहाँ सिर्फ नारी गलती करती है | उसी का दोष होता है और नारी का दोष उस निरीह गाय के दोष जैसा है, जिस को, उससे पूछे बिना, उसकी इच्छा जाने बिना, कसाई के हाथ सौंप दिया जाए | वह कसाई इसे एक झटके में मार दे या तिल-तिल कर जिबह करे, भूखा मारे या चारे के भरे धान पर बाँध दे |"[6] स्त्रियों को परिवार और समाज में अपनी महत्ता स्थापित करने के लिए शिक्षित और आर्थिक रूप से मजबूत होना होगा तभी स्त्री जाति का कल्याण संभव हो सकेगा | स्त्री को पराश्रित होना पूरी तरह से त्यागना होगा | अपने जीवन के फैसले लेने का अधिकार स्वयं अपने हाथ में लेना होगा और अपने निर्णय की गलतियों से भी स्वयं सीखना होगा तभी उनका भाग्य बुलंद हो सकेगा | स्त्री के मूल्य को समझाते हुए पूरन कहता है – "दूसरे देशों में स्त्रियों ने भगवान के हाथ से अपना भाग्य छीन लिया है | उन्होंने अपने अहम को, अपनी खुदी को इतना बुलंद कर लिया है कि उनके भाग्य को बनाने के पहले भगवान को उनसे पूछना पड़ता है | तुम लोग भी यदि अपने भाग्य को खुद अपने हाथ में न लोगी तो जिंदगी भर तिल-तिल कर जलती रहोगी |"[7] समाज में बढ़ते पुरुषों के अत्याचारों को स्त्री हमेशा से सहती आयी है इसलिए वह ज्यादा दबती गयी और पुरषों के द्वारा दबायी गयी | इसके परिणामस्वरूप ऋषि-मुनियों के द्वारा भी पुरुषों को ही देव तुल्य और श्रेष्ठ का दर्जा दे दिया गया | इसी पुरुषवादी मानसिकता और प्रताड़ना पर प्रहार करते हुए पूरन कहता है – " पुरुष के भाग्य के गुण तो ऋषियों ने भी गाये हैं | उसकी थाह तो देवता भी नहीं पाते | वह चाहे तो तीन-तीन शादियाँ करें और तीनों को कष्ट दे-देकर मार डाले, चाहे तो बिना कारण बीवी को छोड़ दे या न छोड़े, रखे या न रखे, चाहे तो बुड्ढा होते हुए भी तो जवान लड़की से शादी कर ले, अपंग और अधमरा होते हुए भी सुंदर और स्वस्थ लड़की ब्याह लाये....पुरुषस्य भाग्य दैवो न जानाति...."[8] प्रस्तुत नाटक में मदन अपनी पत्नी राज के होते हुए

भी दूसरा विवाह अपनी प्रेमिका सुदर्शना से कर लेता है | समाज की विडंबना यही रही है कि पुरुष चाहे जो करे वह श्रेष्ट नज़रों से ही देखा गया है और दिखाया गया है | परन्तु स्त्री का वैसा करने के बारे में सोचना भी अपराध से बड़ा अपराध है | आखिरकार क्यों...? पूरन इस पुरुषवादी मनोवृति का पर्दाफाश करते हुए कहता है – "पुरुष एक स्त्री के होते दूसरा ब्याह कर सकता है तो स्त्री क्यों नहीं कर सकती, विशेषकर पुरुष के ठुकरा देने पर?"[9] पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों को दोयम दर्जे का अधिकारी बना दिया गया | परिणामस्वरूप स्त्री हमेशा आर्थिक, मानसिक, दैहिक, नैतिक, शोषणों से उत्पीड़ित होती रही है | स्त्रियों को धर्म ओर नैतिकता का भय दिखाकर ही और ज्यादा कुचलने और अपंग बनने की स्थिति में पहुँचा दिया गया | अश्क जी इसी दुर्दशा को ताराचंद पात्र के माध्यम से, जो कि एक पिता है उनसे कहलवाते हैं | वे कहते है – " तू नहीं जानती, अपने पति के विरुद्ध सपने में भी बुरी बात सोचना कितनी बड़ा पाप है ! तू नहीं जानती, तू ने एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, तुझे एक ब्राह्मण ने पाला है ; तू किसी चांडाल के घर में उत्पन्न नहीं हुई |"[10] स्त्री, पुरुष की अर्धांगिनी मानी जाती है इसलिए वह सहचरी ओर संगनी बनकर जीवन व्यतीत करना चाहती है | परन्तु इस संसार में पुरुष की कल्पना स्त्री के बिना संभव ही नहीं है, लेकिन उसी समाज में स्त्री, पुरुष की सामंतवादी मनोवृति और उसके द्वारा बनाए गये नियमों की जंजीरों में जकड़ी हुई नजर आती है | मनुस्मृति में कहा गया है कि –

"बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता
न स्वातन्त्रेण कर्त्तव्यं किच्चत्कार्य गृहेष्वपि
बाल्ये पितुवर्शे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने
पुत्राणां भर्तारि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम"[11]

अथार्त बालिका, युवती अथवा वृद्धा स्त्री को घर में भी कोई कार्य स्वतंत्रता से न करना चाहिए | स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के, युवावस्था में पति के तथा स्वामी की मृत्यु के पश्चात् पुत्रों के अधीन रहना चाहिए | उसे कभी स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए | क्या यही पुरुषों का न्यायशास्त्र है? स्त्री के प्रति यह न्याय कितना उचित है? इस मनुवादी विचारधारा से ग्रसित समाज ने स्त्रियों की दशा ओर दिशा दोनों को ही गड्ढे में डाल दिया है | इस विचारधारा पर कटाक्ष करते हुए पूरन कहता है - "चलो रानो, इन पिताओं

और पतियों में कोई अंतर नहीं |"[12] इस पितृसत्तात्मक समाज में कुछ स्त्रियाँ पुरुषवादी विचारधारा के अधीन होकर इस तरह मानसिक रूप से दबाई और कुचली गयी हैं कि वह अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों को ही भूल गयी है। वह अपने व्यक्तित्व को पुरुष को ही समर्पित कर चुकी है। वह स्वयं के प्रति पूरी तरह से परास्त और निरस्त हो चुकी है | मनुष्य होते हुए भी उसकी कोई पृथक सत्ता नहीं – क्या यह उचित है? राज अपने पति के दूसरा विवाह करने के बाद भी उसके साथ रहना चाहती है। वही दूसरी तरफ रानी जो अपने स्वाभिमान और आत्मसम्मान से बढ़कर कुछ नहीं चाहती वह अपने पिता और पति दोनों को छोड़कर अकेले जीवन व्यतीत करने का फैसला लेती है | रानी राज से कहती है – "आज से हमारे रास्ते अलग होंगे राजो | मैं प्रार्थना करुँगी कि तुम सुखी रहो |"[13] स्त्री कभी देवी, दासी या खिलौना बनना नहीं चाहती अपितु जीवन संगिनी या सहचरी के रूप में साथ चाहती है, यह समाज को समझना होगा |

अतः कहा जा सकता है कि स्त्री-सशक्तिकरण की अवधारणा के मूल में सामाजिक रूप से आधी आबादी की समानता का प्रश्न जुड़ा हुआ है | स्त्री परिवार और समाज की धुरी है जिसे शिक्षित किये बिना स्वस्थ परिवार और समाज की कल्पना कोरे कागज की तरह अधूरी है | किसी ने सही कहा है कि एक पुरुष को पढ़ाने से एक व्यक्ति शिक्षित होता है, जबकि अगर एक स्त्री को शिक्षा दी जाए तो पूरा परिवार और समाज शिक्षित होता है | हमें गर्व होना चाहिए कि स्त्री पुरुष पर अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं करना चाहती हैं अपितु परस्पर सहयोग (स्त्री-पुरुष) के द्वारा घर और समाज दोनों को बेहतर बनाने का निरंतर प्रयत्न कर रही हैं |

संदर्भ ग्रंथ -

1. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण, 2017, पृष्ठ सं- 23-24
2. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ. सं. - 38

3. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ.सं.-45

4. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ.सं. – 54

5. वही पृ. सं. – 63

6. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ. सं. – 66

7. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण -1954, पृ. सं. – 67

8. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ. सं. -67

9. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ.सं. -104

10. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ.सं. – 111

11. स्त्री अलक्षित (हिंदी में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध का स्त्री-विमर्श), संपादक : श्रीकांत यादव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : 2018, पृ. सं. – 101

12. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ. सं. – 114

13. अश्क उपेंद्रनाथ, अलग-अलग रास्ते, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1954, पृ. सं. - 114